जनबन्धु ग्रंथमाला ग्रंथांक ७

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

मेरुत्रयोदशी महात्म्य.

व

देवद्रव्य भक्षण का नतीजा.

अनुवादक,

मुनिराज श्री मानसागरजी.

द्रव्य सहायक,

कुकडेश्वर (मालवा) निवासी,

श्रीमान् सेठ किसनलालजी पटवा.

प्रकाशक,

हिन्दी जैनबन्धु ग्रंथमाला, इन्दौर.

वीर सं. २४५२	कीमत	इ. स. १९२६
वि. सं. १९८३	तीन पैसे.	प्रथमावृत्ति.

जैनबन्धु प्रिं. प्रेस, पीपलीबजार इन्दौर.

प्रस्तावना

आज कल हमारे जैन समाज में कुप्रथाओं का विशेष कर प्रचार बढ गया है. हम हमारे पूर्वाचार्यों भाषित व्रत, नियमादि छोड संसार वर्धक उपन्यास नॉवेल पढकर व्यर्थ ही टाइम खोते हैं.

इस बात पर लक्ष देकर परम पूज्य आगमोद्धारक जैनाचार्य श्रीमद् सागरानन्दसूरीश्वरजी के लघु शिष्य मुनिराज श्रीमानसागरजी महाराज साहब ने व्रत नियमों की कथाएं उपन्यास के तौर पर हिन्दी में अनुवाद कर छपवाना शुरु किया है।

यह पुस्तक मेरु त्रयोदशी महात्म्य की है. इसमें देव द्रव्य भक्षण करनेसे क्या हानि होती है? और किसको हुई? तथा किस तरह से वह प्रायश्चित से मुक्त हुआ ? एवं व्रत का आराधन किस रीति से करना ? इत्यादि अच्छी तरह से बतलाया गया है।

नीति से इकट्ठे किये हुए पैसे अच्छे कार्य में ही जाते हैं. उसी मुताबिक कुकडेश्वर [मालवा] निवासी सेठ किशनलालजी पटवा ने इस पुस्तक के छपवाने में सहायता दे उदारता दिखलाई है । तथा ग्रंथमाला के उन्नति के हेतु अन्य सज्जनों के वास्ते अल्प किमत रख तथा साधु साध्वी पाठशाला व लायब्रेरी को भेट देने का रक्खा है ।

प्रकाशक.

श्री शान्तिनाथाय नमः

मेरु त्रयोदशी कथा.

श्री मेरू त्रयोदशी व्रत आश्रयी.

पिंगल राजा की कथा.

ऋषभ प्रभु को नमन करी, कहुं कथा मेरु त्रयोदसी ।
मन वच काय स्थिर करी, हो मुक्ति सुखवासी ॥ १ ॥
मारुदेवं जिनं नत्वा, स्मृत्वा सद्गुरुभारतीम् ।
मेरुत्रयोदशीपर्व व्याख्यानं लिख्यते मया ॥ २ ॥

सर्व प्रथम श्रीऋषभदेव भगवानको नमस्कार करके, तदन्तर ज्ञान दाता गुरू को तथा भगवत् वाणी रूप श्री सरस्वती देवी का हृदय में स्मरण रख, श्री मेरू त्रयोदशी व्रतकी कथा कहता हूं।

अष्ट महा प्रातिहारोंसे विराजमान त्रिजगद्गुरु श्रीमहावीर स्वामी ने जिस भांति परम्परागत पूर्व

तीर्थंकरों के कथनानुसार माह कृष्ण त्रयोदशी महात्म्य गौतम स्वामी के सन्मुख वर्णन किया है, उसी आधार पर मैं भी कहता हूं।

श्री ऋषभस्वामी के बाद पचासलाख कोडा कोडि सागरोपम के अंतर से श्री अजितनाथ नामक तीर्थंकर हुए। उसी समय के मध्य में श्री अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंश में काश्यप गोत्रीय अनन्तवीर्य नामक राजा हुआ। वह अनेकों हाथी, रथ, घोडे, प्यादे आदि सेना का स्वामी था। उसके पांचसो रानियां थीं। उनमें प्रियमती नामक रानी मुख्य पट्टरानी थी। राज्य मंत्री का नाम धनंजय था। वह भी चतुर्बुद्धि निधान तथा महा चतुर था. इस भांति राजा सर्व सुख समाधि से राज्य पालन करता था।

एक समय राजा को बडी चिन्ता हुई कि देखो! मैं ऐसा राज्याधिपति हूं किन्तु मेरे एक भी पुत्र नहीं है तो मेरे बाद मेरे इस राज्य को कौन भोगेगा। कहा भी है कि:--

अपुत्रस्य गृहं शून्यं, दिशः शून्या अ बांधवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं, सर्वशून्यं दरिद्रिणः ॥

अर्थः—पुत्र बिना गृह शून्य, मित्र बिना दिशा शून्य, ज्ञान बिना मूर्ख का हृदय शून्य और दरिद्र को सब शून्य लगता है.

इसलिये पुत्र बिना घर कदापि नहीं शोभता. यह विचार करके पुत्र प्राप्ति के लिये अनेक उपाय किये किन्तु सब व्यर्थ हुए।

इसी अवसर में कौणिक नामक एक साधु आहारार्थ राजा के गृह पर आया. उसको सन्मुख आता देखकर राजा, रानी दोनों हर्षित होकर उठे। विधि पूर्वक वंदन करके शुद्ध आहार बहोराया, और हाथ जोडकर पूछने लगे कि हे स्वामिन्! हमारे पुत्र होगा कि नहीं? यह सुन-कर साधु ने कहा कि हे राजन्! ज्योतिष निमित्त संबन्धी प्रश्नों का उत्तर देना यह साधु का धर्म नहीं। यह सुन पुनः राजा और रानी साधु की अनेक प्रकार से विनंती कर पूछने लगे। यह देख साधु के मनमें करुणा उत्पन्न हुई। इससे वह राजासे कहने लगा, कि देखो, आप धर्मध्यान, प्रभुपूजा आदि करो, इससे अंतराय टूटेगा और तुम्हारे पुत्र होगा, किन्तु वह पंगु (लंगडा) होगा. यह कह कर

साधु चलेगये। तत्पश्चात् राजा व रानी विचारने लगे कि अरे! अपने को पंगु पुत्र होवेगा!!! अस्तु.

क्रमशः धर्मध्यान के प्रभाव से रानी को गर्भ रहा और नौमास पूर्ण होते ही रानी को पुत्रोत्पत्ति हुई। बधाइये ने राजा को जाकर बधाई दी. हे महाराज! आपके गृह पर पुत्र जन्म हुआ है। सुन कर राजा अत्यंत हर्षित हुआ और बडा भारी जन्म महोत्सव किया। बारहवें दिन सर्व कुटुंबियों को भोजन कराया, और उस कुमार का पिंगल राजा नाम रखा। उस कुमार को सदैव अतःपुर में ही रखते थे, कभी बाहर नहीं निकालते थे। इससे सब लोग राजा से पूछने लगे कि आप राजकुमार को बाहर क्यों नहीं निकालते? राजा ने उनको वक्रोक्तिसे उत्तर दिया कि कुमार अति अद्भुत रूपवान है, इसलिये कोईकी नजर लगजाने के भय से बाहर नहीं निकालते हैं। यह बात सारे नगर में प्रसिद्ध होगई। और सब कहने लगे कि पिंगल राजकुमार सदृश किसीका भी रूप नही है.

इसी अवसर में इस अयोध्या नगरी से सवासौ योजन दूर मलय नामक एक देश था

उसके अन्तर्गत ब्रह्मपुर नामक नगर में इक्ष्वाकु वंशीय, काश्यप गोत्रीय सत्यरथ राजा था। उसकी पट्टरानी का नाम इन्दुमती था। उसके गर्भ से गुणसुन्दरी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। यह राजकुमारी अत्यन्त रूप लावण्य गुण युक्त थी, तथा इस राजा के भी पुत्र नहीं था. इस कारण राजकुमारी माता पिताओं को बडी ही प्यारी थी। क्रमशः यह राजपुत्री पढ गुण कर चौसठों कलाओं में निपुण होगई, और यौवनावस्था को भी प्राप्त हुई। कुमारी की यह अवस्था देखकर उसके पिता उसके समान ही किसी स्वरूपवान् वर की शोध करने लगे। परन्तु उसके योग्य वर कहीं नहीं मिला। इससे राजा को बडी चिन्ता होने लगी। इसी अवसर में नगर के बहुत से व्यापारी गाडियों में नाना प्रकार का किराना भर कर व्यापार के अर्थ देशदेशान्तर जाने लगे। राजाने उनको बुलवाकर कहा कि, तुम देश देशान्तर जाते हो, वहां अपनी राजकुमारी के योग्य कोई जगह यदि सुयोग्य वर मिल जाय तो सगपन (संबंध) कर आना. व्यापारी गण राजा का वचन स्वीकार कर रवाना हुए।

व्यापारी लोग क्रमशः नगर नगर भ्रमण करते अयोध्या नगरी में आये। वहां सर्व किराना बेंच कर बहुतसा द्रव्य उपार्जन किया. पश्चात् अपने देश में खपने योग्य दूसरी जाति का किराना खरीद् कर स्वदेश जाने को तैयार, हुए, इतने ही में नागारिको के मुख से राजकुमार के अद्भुत रूप का वर्णन सुन, वे राजा के पासगये और कुमार के साथ गुणसुंदरी का संबंध (सगपण) निश्चित किया. राजाने भी इन व्यापारियों का बडा सन्मान किया, तथा उनको दाण (महसूल) माफ कर दिया। इससे व्यापारी लोग भी आनंदित हो अपने देश को रवाना हुए। अपने नगर आकर उन्होंने राजा से संपूर्ण वृत्तांत कहा। राजा भी कुमार का अद्भुत रूप तथा गुण सुन अत्यन्त ही हर्षित तथा संतुष्ट हुआ।

जब पुत्री विवाह के योग्य हुई तब राजाने कुमार को बुलानेके लिए अपने सेवको को अयोध्या भेजे. उन्होंने जाकर राजा अनन्तवीर्य से प्रार्थना की, हे महाराज! राजकुमार को विवाह के लिये शीघ्र भेजिए। यह सुन राजा मनमें बडा

उदास होकर महल में गया, और एकान्त में जाकर मंत्री से पूछने लगा कि अब क्या उपाय करना चाहिये ? अपना कुमार तो पंगु है, इसका किस प्रकार विवाह करना ? कौन इसे कन्या देगा ? यह सुन प्रधान (राजमंत्री) ने कुछ विचार कर बुलाने को आये हुए सेवकों को बुलाकर कहा कि, अभी राजकुमार यहां नहीं है। इस समय वह यहां से दो सौ योजन दूर मुहग्गी पट्टन नामक नगर में अपने मोसाल (माता के गृह) को गया है। इस लिये अभी लग्न नहीं हो सकेगा। जब कुमार आ जायगा तब तुमको संदेशा दूंगा और कुमार को भेजूंगा। राजमंत्री के ये वचन सुन सेवकों ने कहा कि हे स्वामिन्! हमारा नगर यहां से बहुत दूर है। इससे बारंबार यहां आना नहीं बन-सकता. इसलिये लग्न का दिन आप अभी निश्चित करके कह दीजिए, और उस लग्न पर आपभी शीघ्र पधारिएगा। यह सुन प्रधान ने उत्तर दिया कि आज से सोलहवें मासमें लग्न करेंगे. यह लग्न समाचार लेकर सेवकगण अपने देश को गये, और जाकर राजा से सर्व वृत्तान्त कह सुनाया.

इधर सेवकों को विदा करके राजा अनंतवीर्य चिन्तातुर हो प्रधान से कहने लगा कि, अब कुमार का क्या उपाय करना चाहिये। सोलह मास तो कल व्यतीत हो जावेंगे; इस प्रकार कह कर राजा, रानी तथा प्रधान बडे चिन्ता मग्न होकर उपाय ढूंढने लगे। परन्तु कुछ भी सूझ नहीं पडा।

इसी समयमें पांच सौ साधुओं सहित चतुर्ज्ञानी गांगिल नामी आचार्य नगर के उद्यान में आकर समोसरे। बनपाल ने उनकी बहुत सेवा भक्ति करके नगर में जाकर राजा अनन्तवीर्य को आचार्य महाराज के आगमन की बधाई दी। राजा ने हर्षित हो बनपालक को बहुत सा द्रव्य दिया. और हाथी, घोडे आदि बडी ऋद्धि के साथ उद्यानमें जाकर आचार्यादि सर्व साधुओं को वन्दन कर हाथ जोड कर सन्मुख बैठगया. मुनिराज ने शान्ति हो जाने पर उपदेश देना प्रारंभ किया.

धर्मोपदेश.

जीवदयाइं रमिज्जइं, इन्दियवग्गो दमिज्जइ सयावि।
सच्चं चेव वदिज्जइं, धम्मस्स रहस्समिणं चेव ॥ १ ॥

भावार्थः—उत्तम प्राणी सदैव जीवदया में रमता है, पंचेन्द्रिय समूह को वश करता है, सत्य वचन बोलता है, यही जैन धर्म का रहस्य है ॥ १ ॥

जयणा धम्मस्स जणगी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव ।
तह वुड्ढिकरी जयणा, एगंत सुहावणा जयणा ॥ २ ॥

भावार्थः—जयणा धर्मकी माता है, जयणा [उपयोग] धर्म की पालक है, तथा जयणा धर्म की अत्यन्त वृद्धि करने वाली है, और वह जयणा ही एकांत मोक्ष सुख की दाता है ॥ २ ॥

आरंभे नत्थि दया, महिलासंगेण नासए बंभं ।
संकाए सम्मत्तं, पव्वज्जा अत्थगहणेणं ॥ ३ ॥

भावार्थः—आरंभ में दया नहीं होती, स्त्री की संगति करने से ब्रह्मचर्य का नाश होता है, जिन बचन में शंका रहे उसे समकित नहीं होता, और द्रव्य परिग्रह का संग्रह करे उसे चारित्र नहीं होता ॥ ३ ॥

जे बंभचेरभट्ठा, पाए पाडंति बंभयारिणं ।
ते हुंति टुंट मुंगा, बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो प्राणी स्वयं ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट शील गुण रहित होकर दूसरे जो ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले हैं उनसे नमस्कार करावे वह प्राणी टूंटा लूला पंगु तथा बहरा होवे. तथा बहुत दुख पावे, व ऐसे प्राणी को जो समकित हैं, वे भी दुःख से प्राप्त होते हैं.

इसलिये दया धर्म का मूल है, और जीवहिंसा पाप का मूल है। जो स्वयं हिंसा करें दूसरे से हिंसा करावे, जो हिंसा करता हो उसकी प्रशंसा करे, ये तीनो जने समान पापफल भोगें। फिर जो मनुष्य पाप करता हुआ भी मन में नहीं डरता उसके हृदयमें दया ही नहीं है।

तथा जो पुरुष निर्दयी होकर बहुतसे एकेन्द्रिय जीवों का नाश करता है, वह प्राणी पर भव में वात्त, पित्त, श्लेष्मादिक अनेक रोगों को भोगता है. और जो दो इन्द्रिय जीवों का विनाश करता है वह परभव में गूंगा, तथा मुखरोग वाला व दुर्गन्ध निश्वास युक्त होता है, और जो तीन इन्द्रिय जीवों का नाश करता है, उसे परभव में नासिका रोग होता है. और चौरिन्द्रिय जीवों का वध करता है,

वह परभव में काना, अंधा, चूंचा इत्यादिक अनेकों नेत्र रोगों का भोक्ता होता है, तथा जो जीव पंचेन्द्रिय जीवों का विनाश करता है, उसको परभव में पांचों इंद्रियों की आरोग्यता नहीं मिलती. इस कारण से हे भव्य लोकों! हिंसा का त्याग करो, असत्य को त्याग सत्य भाषन करो, इत्यादिक इस प्रकार का धर्मोपदेश सुनकर राजाने गुरु से पूछा कि, हे स्वामिन्! मेरा पुत्र किस कर्म से पंगु हुआ? यह सुन चतुर्ज्ञानी गांगिल मुनि कुमार का पूर्वभव वर्णन करने लगे.

पूर्वभव

हे राजन्! इस जबूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में अचलपुर नामक नगर में महेन्द्रध्वज नामी राजा था। उसकी उमया नामक पट्टरानी का सामन्तसिंह नामक कुमार था। एक समय उस कुमार को पाठशाला जाते हुए मार्ग में जुंआरी लोग मिले, उनकी संगति से वह जूंआ खेलना सीखा. इसी भांति नीचों की संगति से सातों व्यसन का सेवन प्रारंभ कर दिया। राजा ने उसके व्यसनों को

छुडाने के लिये अनेक उपाय किये, परन्तु सब निष्फल हुए। राजा ने कुमार को बहुत कुछ शिक्षा भी दी, परन्तु उसने एक न मानी। अन्त में राजा ने उसे देश से निकाल दिया, परन्तु तो भी कुमार ने व्यसनों का त्याग नहीं किया।

देश से निकाला जाने के बाद कुमार अनेक देशों में भ्रमण करता हुआ शिवपुर नगर में आया। वहां चंपक नामक सेठ ने उसके सुन्दर रूप व आकार को देखकर समझा कि यह कोई उत्तम पुरूष है तथा इसका शरीर बडा ही सुकुमार है, इस से पारिश्रम का काम नहीं हो सकेगा, यह विचार करके सेठ ने उसको अपने घर के पास एक देवालय था, उसकी पूजा करने के लिये अपने घर रख लिया। परन्तु कुमार तो दुष्टात्मा था, वह भगवान के सन्मुख रक्खे हुए चावल, सुपारी, फलादिक जो कुछ भी होवें उनको गुप चुप बेच-दिया करता, और उससे जो द्रव्य उत्पन्न होता था उससे जूंआ खेलता। जब इस तरह बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब इस बात की चंपक सेठ को खबर हुई तो सेठ ने कुमार से कहा कि हे

भोले ! जो प्राणी देव द्रव्यादि खाता है वह बहुत कालतक संसार का परिभ्रमण करता है, इसलिये अब तू कभी ऐसा काम मत करना. ऐसा बहुत २ उपदेश दिया परन्तु तो भी उस दुष्ट मिथ्या दृष्टि कुमार ने तीव्र अज्ञान के उदय से कुकर्म नहीं छोडे ।

एक दिन भगवान के छत्र आदि आभरणों को चुराकर बेच दिया, और उपार्जित द्रव्य से अनाचार सेवन किया । जब यह बात सेठ को मालूम हुई तो उसे दुष्टाचारी समझ वहां से निकाल दिया ।

वहां से निकल बन में भ्रमण करता हुआ आखेट (शिकार) कर ने लगा और मृगादिक अनेक जीवों का विनाश कर उदर पोषण करने लगा । उस बन में तपस्वियों का आश्रम था, वहां बहुत तपस्वी पडे रहते थे, तथा वन में से बहुत से मृग, पशु भी विश्राम लेने के लिये वहां आबैठते थे । एक दिन एक सगर्भ मृगी वहां आई. सामन्तसिंह कुमार ने उसे देखकर बाण द्वारा उसके चारों पैर छेद दिये. इससे मृगी (हिरनी) भूमि पर गिरपडी.

उसे एक तपस्वी ने देखकर धर्म श्रवण कराया. उससे मृगी मृत्यु पाकर शुभ गति को गई और उनका गर्भ भी दुःख के मारे गिर पडा. उनको देख एक तपस्वीको बहुत गुस्सा आया, और उस तपस्वी ने सामन्तसिंह कुमार से कहा, कि हे दुष्ट! जैसे तैंने इस मृगी के पांव छेद दिये हैं वैसे ही तू भी पर भवमें पंगु होयगा। यह श्राप देकर तपस्वी तो अपने आश्रम को चला गया और सामन्त-सिंह कुमार तपस्वी को क्रोधातुर देख डरता हुआ बन में भाग गया। परन्तु अशुभ कर्म के उदय से उसे बनमें एक सिंह मिला उसने तत्काल कुमार को मारडाला। वहां से अशुभ ध्यान में मृत्यु पाकर कुमार नरक में गया।

वहां आयु पूर्ण करके तिर्यंच तथा नारकी भवों में असंख्याता वर्षोंतक रहा, और उनमें अकाम निर्जरा से बहुत से कर्मों का क्षय करता हुआ, एक वार महाविदेह क्षेत्र में कुसुमपुर नगर के राजा विशालकीर्ति की दासी शिवा के गर्भ से पुत्र होकर उत्पन्न हुआ. माता पिताने 'वज्रसेन' नाम रखा. क्रमसे बडा होते युवानी में पदार्पण

किया. दासी पुत्र होने से राजा महाराजाओं की सेवा चाकरी कररहा है. पूर्वकर्म के उदय से वहां भी गलितकुष्ठ रोग हुआ, जिससे हाथ पांव खिर गये और वह पंगु होगया। अंत समय में शिवा- देवी दासी ने नवकार मंत्र सुनाया उससे समाधि मरण पा व्यंतरिक देवता हुआ।

फिर वहां से आकर इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सौहार्दपुर नामक नगर में सूरदास सेठ के घर में वसंततिलका नामक भार्या के गर्भ से पुत्र होकर जन्मा। और उसका स्वयंप्रभ नाम हुआ। वह बडा गुणी व विवेकी हुआ, परन्तु उसके पांव में अत्यन्त फोडा फुंसी हुआ करते थे जिस से वह चल नहीं सकता था, और बडा दुखी रहता था. जब वह आठ वर्ष का हुआ तब उसके माता पिता बडे चिन्तामग्न रहने लगे कि अपने एक मात्र पुत्र है वह भी पांवों से रोगी है.

इसी अवसर में श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने के लिये एक बडा संघ उद्यत हुआ. यह सुन सेठ भी अपने पुत्र को साथ ले संघ के साथ यात्रा करने चले। चलते २ सर्व श्री संघने सिद्धक्षेत्र में

पहुंचकर मुकाम किया. पश्चात् दर्शन के निमित्त सब लोग पर्वत पर चढे। उन्होंने श्री ऋषभदेवजी की सेवा भक्ति की। सूरदास सेठ भी स्त्री सहित पुत्र को लेकर पर्वत पर चढा और पुत्र को सूर्यकुंड में स्नान कराया, परन्तु वह जल देवता अधिष्ठित था, और स्वयंप्रभ कुमार को अभी बहुत से कर्म भोगना शेष थे, इस कारण से कुंड का जल उसके पांवों को स्पर्श तक नहीं करता था, अर्थात् स्पर्श तो करे परंतु कुछ भी पांव पर ठहरता नहीं जैसे चिकटे भाजन पर पानी नहीं ठेर सकता है.

यह देख कर सर्व संघ के मनुष्य चकित हुए, और मुनिराज के पास जा वंदन करके इसका विचार पूछने लगे। मुनीश्वर ने कहा कि इसने पूर्व भव में बहुत देवद्रव्य खाया है, और एक मृगी के चारों पांव छेदे हैं. उनमें से बहुत से कर्मों का तो अकाम निर्जरा से क्षय होगया है, और स्वल्प शेष है, परन्तु वे शेष कर्म निकाचित-चीठे हैं, इससे बिना भोगे उनको इस का छुटकारा होने का नहीं. इसी कारण से तीर्थजल इसको स्पर्श नहीं करता है।

मुनि के यह वचन सुन कर माता, पिता तथा पुत्र तीनों व्यक्तियों को वैराग्य उत्पन्न हुआ, और श्री ऋषभदेव के चरण कमल को नमस्कार कर आये और धर्म में उद्यमवंत हुए।

वह कुमार सोलह हजार वर्ष पर्यन्त कुष्ठ, व्रणादिक रोगों की वेदना भोग कर अंतसमय में कर्म का आलोचन कर शुभ परिणाम से मृत्यु पाकर प्रथम देवलोक में देवता भव में उत्पन्न हुआ. वहां से निकल कर हे राजन्! यह तेरा पुत्र पैंगलकुमार हुआ है। इस भांति कुमार का पूर्व भव वर्णन करके गांगिल मुनि फिर कहने लगे—

श्लोक

मद्यपानाद्यथा जीवो, न जानाति हिताहितम्।
धर्माधर्मौ न जानाति, तथा मिथ्यात्वमोहितः॥ १॥

अर्थ—जिस भांति जीव मद्यपान करने से हिताहित को नहीं जानता है, उसी भांति मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्वी जीव धर्म अधर्म को नहीं जानता॥ १॥

श्लोक—

मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितातं, तत्वातत्वे जानंते नैव जीवाः
किं जात्यंधाः कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्यव्याक्तिमासादयेयुः

अर्थ—जिस प्राणिका जीव मिथ्यात्वसे बहुतही मोहित होगया है. वे प्राणी तत्वातत्व को नहीं जानते हैं जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष किसी भी वस्तु को पाकर भली बुरी नहीं समझता वैसाही जानो

श्लोक—

अभव्याश्रयिमिथ्यात्वेऽनाद्यनंता स्थितिर्भवेत् ॥
सा भव्याश्रयिमिथ्यात्वे–ऽनादिसांता पुनर्मता ॥ ३ ॥

अर्थ—जो अभव्य आश्रयी मिथ्यात्वकी स्थिती है वो अनादि अनन्त समझना और भव्यजीव आश्रयी मिथ्यात्व की स्थिती अनादि, सान्त होती है. ॥ ३ ॥

इस भांति के मिथ्यात्व के उदय से जीव अनन्त कर्म बांधते हैं. वैसे ही तेरे पुत्र ने भी ऐसे अनुचित कर्म उपार्जन किये हैं कि जिनसे पंगु हुआ है

ये वचन सुन राजा ने पूछा कि हे स्वामिन् ! अब कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे इस कुमार

के कर्मों की निवृत्ति हो जाय। मुनिराज ने कहा कि, हे राजन्! तीसरे आरे के अंतिम तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रहे थे, उस समय माघ (माह) कृष्ण त्रयोदशी के दिन श्री ऋषभदेव स्वामी का निर्वाण कल्याण हुआथा. इस से इस दिन का बडा भारी माहात्म्य है.

व्रत विधी।

इसका बडा पर्व मानकर उस दिन चौविहार उपवास करना, रत्न के पांच मेरु बनाना, चारों दिशाओं में चार छोटे मेरु बनाना, उनके आगे चारों दिशाओं में नन्दावर्त करना, दीप धूप आदि अनेक प्रकार से पूजन करना, इस भांति तेरह मास अथवा तेरह वर्ष पर्यन्त करना, और श्री ऋषभदेव स्वामी के 'ॐ ह्रीं श्रीं ऋषभदेव पारंगताय नमः' ऐसे दो हजार जाप करना, नौकारवाली गिनना इस भांति प्रतिमास करे तो कर्म का क्षय होवे, इस भव तथा परभव में सुख संपत्ति पावे। और त्रयोदाशी के दिन पौषध करे तथा पारणे (पुन-र्भोजन) के दिन गुरु को पडिलाभी अतिथि संविभाग कर पश्चात् भोजन करे।

गुरु महाराज के ये वचन सुन कर अनंत-वीर्य राजा पुत्र को व्रत अंगीकार करा, गुरु को नमस्कार कर अपने स्थान को गया।

पिंगलकुमार ने प्रथम माघ कृष्ण त्रयोदशी का व्रत किया, उससे पांव के अंकुर प्रगट हुए। इसी भांति तेरह मास पर्यन्त व्रत किया तब सुंदर, रूपवान हाथ पांव प्रगट होगये। यह देख कर राजा अत्यंत हर्षित हुआ। धर्म की महिमा देख कर परम वैराग्यवान होकर विशेष धर्म करने लगा। पश्चात् सोलहवें मास में पिंगलकुमार ने गुणसुंदरी का पाणिग्रहण किया. साथ ही अन्य भी बहुत सी कन्याओं से विवाह किया।

इसके बाद अनन्तवीर्य राजाने पिंगलकुमार को राज्य सौंप कर स्वयं गांगिलमुनि से चारित्र ग्रहण किया और निरतिचारपन पालन करके श्री शत्रुंजय तीर्थ में अनशन कर, कर्म क्षय कर मोक्ष पद पाया।

उद्यापन विधि.

इधर पिंगल राजा भी पुत्रवत् प्रजा का पालन कर नीति के अनुसार राज्य कार्य करता रहा, और

तेरह वर्ष पर्यन्त विधि पूर्वक उसने मेरु त्रयोदशी का तप किया. तप पूर्ण होने पर शक्त्यानुसार उद्यापन किया, भगवान के बडे २ शिखरबंध तेरह देवालय बनवाये, उनमें तेरह प्रतिमाएं स्वर्ण की, तथा तेरह प्रतिमाएं रोप्य (चांदी) की, और तेरह प्रतिमाएं रत्न की स्थापित की । तेरह प्रकार के रत्नों से पांच मेरु बनवाकर चढाये। तेरह वक्त श्री सिद्धाचलजी के संघ निकाले, तेरह स्वामि-वात्सल्य किये. तेरह तेरह साधुके उपगरण पात्रा, तरपणी, दांडे, ओघा, कंबल आदि रखे. और तेरह तेरह मंदिर के उपगरण कटोरी, कलश, चंद्रवा, पुंठीआ, तासक, वालाकुंची, धूपदानी, धोती, उत्तरासन, मुखकोस, अंगलूहणा इत्यादि रखे. और तेरह तेरह चारित्र के उपकरण, कटासणा, मुहपत्ती, धोती, चरवले, नवकारवाली आदि रखके शासनोन्नत्ति की. इस भांति अनेक प्रकार से ज्ञान की भी भक्ति की ।

इसके बाद भी कितने ही पूर्व वर्ष पर्यन्त व्रत सहित राज्य का पालन किया और अन्त में अपने पुत्र महसेन को राज्य पद दे आपने श्री

सुव्रताचार्य गुरु के पास बहुत से राज्यपुरुषो सहित दीक्षा अंगीकार करके द्वादशाङ्गी पढा, और आचार्य पदवी पाई। इसके पश्चात् क्षपक श्रेणी चढने के लिये अष्टम गुणस्थान में शुक्ल ध्यान धरते हुए चारित्र का पालन कर क्रमशः बारहवें गुण स्थान पर चढ उसके अंत समय में चतुर्घातिक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय कर्मों का क्षय कर तेरहवें गुण स्थान के प्रथम समय में केवलज्ञान प्राप्त किया. तत्पश्चात् पृथ्वीमंडल में विहार करता हुआ, बहुत से भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देता हुआ, सर्व बहत्तरलक्ष पूर्व का आयु पालन कर चोदहवें गुण स्थान में पांच ह्रस्व अक्षर के समान कालमें योग निरोधन कर शेष रहे हुए चतुरघातिक कर्म वेदनीय नाम, आयुष्य, गोत्र का क्षय कर, शरीर त्याग, पूर्व प्रयोगसे बंधन छेदन आदि कर एक योजन प्रमाण लोकान्त पर सिद्ध क्षेत्र में एक समय में सादि अनन्त भाग में स्थिर हो रहा।

इस भांति पिंगल राजा से इस मेरु त्रयोदशी का व्रत प्रवर्तमान हुआ। उसके बाद कुछ समय

पर्यन्त तो लोक रत्नमय मेरु चढाते रहे, पश्चात् कुछ काल पर्यन्त सोने के मेरु चढाते रहे किन्तु आज कल घृत के मेरु चढाते हैं।

इस प्रकार मेरु त्रयोदशी का महिमा श्रवण कर हे भव्य लोको ! शुभ भाव से यह व्रत अंगीकार करो. जिससे इस लोक में मनवांछित सुख संपत्ति तथा परलोक में देवगति का सुख और मोक्षरूप अनन्त सुख की प्राप्ति हो।

विशेष विधि.

१ उपवास के दिन १२ खमासमण देना और १२ साथिये करना.

२ उपवास किया हो और स्त्री जाति को कारण आजावे (रजस्वला होजाय) तो उपवास गीनती में आता है गुणना आदि दूसरी तेरस को करदेना.

३ तीन टंक देववंदन, प्रतिक्रमण आदि करना.

४ खमासमण देके इरियावही करके ' आदिनाथ निर्वाण पद आराधनार्थ काउस्सग्ग करूं कहके

वंदण वत्ति. अन्नत्थ कहके १२ लोगस्स या ४८ नौकार का काउस्सग्ग करके प्रगट लोगस्स कहना.

५ यह व्रत महिने महिने करना हो, तो १३ महिने में, और सिर्फ मेरुत्रयोदसी के दिन करना हो, तो १३ वर्षमें पूर्ण होता है.

चैत्य वंदन.

अष्टापद गिरी उपरे, दश हजार मुनि साथ ।
भक्त चतुर्दश तप कियो, अनशन दीनानाथ ॥ १ ॥
सुन आये चक्री वहां, भरत भरत भरतार ।
आसन कंपे इंद्र भी, आए सुर परिवार ॥ २ ॥
अवसर्पिणी अर तीसरे, पक्ष नेवासी शेष ।
त्रियोदशी वदी माघ की, अभिचि तार विशेष ॥ ३ ॥
वासर पूरव भाग में, पर्यंकासन धीर ।
ध्यान शुक्ल बल कर्म को, नष्ट करे वड वीर ॥ ४ ॥
कर्म अभाव आतमा, सिद्ध परं पद जास ।
अजर अमर अज नित्यता, सादि अनंता वास ॥ ५ ॥

जैनबन्धु ग्रंथमाला ग्रंथांक ७

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

मेरुत्रयोदशी महात्म्य.

व

देवद्रव्य भक्षण का नतीजा.

अनुवादक,

मुनिराज श्री मानसागरजी.

द्रव्य सहायक,

कुकडेश्वर (मालवा) निवासी,

श्रीमान् सेठ किसनलालजी पटवा.

प्रकाशक,

हिन्दी जैनबन्धु ग्रंथमाला, इन्दौर.

वीर सं. २४५२	कीमत	इ. स. १९२६
वि. सं. १९८३	तीन पैसे.	प्रथमावृत्ति.

जैनबन्धु प्रिं. प्रेस, पीपलीबजार इन्दौर.